श्री कीर्तिरत्नसूरि रचित नेमिनाथ महाकाव्य

[प्रो० सत्यव्रत 'तृषित']

[खरतरगच्छ के महान् आचार्यों ने संघ-व्यवस्था बड़ी सूझ-बूझ से की। मुख्य पट्टधर-युगप्रधान आचार्य के साथ-साथ सामान्य आचार्य के रूप में उपयुक्त व्यक्तियों को आचार्य पद दिया जाता रहा है जिससे पट्टधर के स्वर्गवास हो जाने के बाद कोई अव्यवस्था नहीं होने पावे। भावी पट्टधर स्वर्गवासी आचार्य के अन्तिम समय में समीप न होने पर यथासमय उस पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए सामान्य आचार्य को भोलावण दे दी जाती थी और वे उन युगप्रधानाचार्य के संकेतानुसार योग्य स्थान और शुभमुहुर्त्त में पूर्ववर्त्ती आचार्य की सूरि मन्त्राम्नाय परंपरा को देते हुए बड़े महोत्सव के साथ नये गच्छनायक का पट्टाभिषेक करवा देते थे।

आचार्य वर्द्धमानसूरि ने जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि को आचार्य पद दिया, इनमें से जिनेश्वरसूरि पट्टधर बने और बुद्धिसागरसूरि उनके सहयोगी रहे। इसके बाद जिनचद्रसूरि संवेगरंगशालाकर्त्ता और अभयदेव सूरि को आचार्य पद दिया गया इनमें से जिनचन्द्रसूरि पट्टधर बने और उनके स्वर्गवास के बाद अभयदेवसूरि गच्छनायक बने। यों अभयदेवसूरि के वर्द्धमानसूरि आदि कई विद्वान शिष्य थे पर जिनवल्लभगणि में विशेष योग्यता का अनुभव कर उन्होंने प्रसन्नचंद्रसूरि को यथासमय जिनवल्लभगणि को अपने पट्ट पर स्थापित करने की आज्ञा दी थी। उसकी पूर्त्ति न कर सकने के कारण देवभद्राचार्य ने काफी समय के बाद अभयदेवसूरि के पट्ट पर जिनवल्लभसूरि को प्रतिष्ठित किया। अल्पकाल में ही उनका स्वर्गवास हो जाने पर इन्हीं देवभद्रसूरिजी ने सोमचन्द्र गणि को जिनवल्लभसूरि के पट्ट पर अभिषिक्त किया। इसी तरह मणिधारी जिनचन्द्रसूरि ने अपने अन्तिम समय में निकटवर्त्ती गुणचन्द्रगणि को अपने पट्टधर का जो संकेत दिया था तदनुसार चौदह वर्ष की आयु वाले जिनपतिसूरिजी को उनके पट्ट पर स्थापित किया गया।

इस परम्परा में पन्द्रहवीं शताब्दी के आचार्य जिनभद्रसूरिजी ने उ० कीर्त्तिराज को आचार्य पद देकर कीर्तिरत्नसूरि के नाम से प्रसिद्ध किया। उन्होंने ही जिनभद्रसूरिजी के पट्ट पर जिनचन्द्रसूरिजी को स्थापित किया था। आचार्य कीर्त्तिरत्नसूरि अपने समय के बहुत बड़े विद्वान और प्रभावक व्यक्ति थे। उनके सम्बन्ध में सं० १९९४ में प्रकाशित हमारे ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह में आवश्यक जानकारी दी गई थी। उनके ५१ शिष्य हुए, जिनमें गुणरत्नसूरि, कल्याणचन्द्र आदि उल्लेखनीय रहे हैं। कीर्त्तिरत्नसूरिजी की प्राचीनतम मूर्त्ति नाकोड़ा पार्श्वनाथ तीर्थ में पूजित है। इनकी शिष्य-सन्तति का बहुत विस्तार हुआ। कीर्त्तिरत्नसूरि शाखा आजतक चली आ रही है जिसमें पचासों कवि, विद्वान हुए हैं, उसी में आचार्य श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी जैसे गीतार्थ आचार्य-शिरोमणि हुए हैं। कीर्त्तिरत्नसूरिजी की शिष्य-परम्परा ने अनेक स्थानों में उनके स्तूप-पादुकादि स्थापित करवाये और बहुत से स्तवन-गीतादि निर्माण किये। उन्हीं महापुरुष के एक महाकाव्य का आलोचनात्मक अध्ययन गवर्नमैण्ट कालेज श्रीगंगानगर के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष प्रो० सत्यव्रत प्रस्तुत कर रहे हैं।

—संपादक]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन संस्कृत महाकाव्यों में कविचक्रवर्ती कीर्त्तिराज उपाध्यायकृत नेमिनाथ महाकाव्य को गौरवमय पद प्राप्त है। इसमें जैन धर्म के बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ के प्रेरक चरित्र के कतिपय प्रसंगों को, महाकाव्योचित विस्तार के साथ, बारह सर्गों के व्यापक कलेवर में प्रस्तुत किया गया है। कीर्त्तिराज कालिदासोत्तर उन इने-गिने कवियों में हैं, जिन्होंने माघ एवं हर्ष की कृत्रिम तथा अलंकृतिप्रधान शैली के एकच्छत्र शासन से मुक्त होकर अपने लिये अभिनव सुरुचिपूर्ण मार्ग की उद्भावना की है। नेमिनाथ काव्य में भावपक्ष तथा कलापक्ष का जो मंजुल समन्वय विद्यमान है, वह ह्रासकालीन कवियों की रचनाओं में अतीव दुर्लभ है। पाण्डित्य प्रदर्शन तथा बौद्धिक विलास के उस युग में नेमिनाथ महाकाव्य जैसी प्रसादपूर्ण कृति की रचना करने में सफल होना कीर्त्तिराज की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

नेमिनाथ महाकाव्य का महाकाव्यत्व

प्राचीन भारतीय आलङ्कारिकों ने महाकाव्य के जो मानदण्ड निश्चित किये हैं, उनकी कसौटी पर नेमिनाथ-काव्य एक सफल महाकाव्य सिद्ध होता है। शास्त्रीय विधान के अनुरूप यह सर्गबद्ध रचना है तथा इसमें, महाकाव्य के लिये आवश्यक, अष्टाधिक बारह सर्ग विद्यमान हैं। धीरोदात्त गुणों से युक्त क्षत्रियकुल-प्रसूत देवतुल्य नेमिनाथ इसके नायक हैं। नेमिनाथ महाकाव्य में शृङ्गार रस की प्रधानता है। करुण, वीर तथा रौद्र रस का आनुषंगिक रूप में परिपाक हुआ है। महाकाव्य के कथानक का इतिहास प्रख्यात अथवा सदाश्रित होना आवश्यक माना गया है। नेमिनाथकाव्य का कथानक लोकविश्रुत नेमिनाथ के चरित से सम्बद्ध है। चतुर्वर्ग में से धर्म तथा मोक्ष की प्राप्ति इसका लक्ष्य है। धर्म का अभिप्राय यहाँ नैतिक उत्थान तथा मोक्ष का तात्पर्य आमुष्मिक अभ्युदय है। विषयों तथा अन्य सांसारिक आकर्षणों का परित्याग कर परम-पद प्राप्त करने की ध्वनि, काव्य में सर्वत्र सुनाई पड़ती है।

महाकाव्य की रूढ़ परम्परा के अनुसार नेमिनाथ-महाकाव्य का प्रारम्भ नमस्कारात्मक मंगलाचरण से हुआ है, जिसमें स्वयं काव्यनायक नेमिनाथ की चरणवन्दना की गयी है :—

वन्दे तन्नेमिनाथस्य पदद्वन्द्वं श्रियाम्पदम्।
नाथैरसेवि देवानां यद्भृङ्गैरिव पङ्कजम् ॥ १।१॥

आलंकारिकों के विधान का पालन करते हुए काव्य के आरम्भ में सज्जन-प्रशंसा तथा खलनिन्दा भी की गयी है। यदुपति समुद्रविजय की राजधानी के मनोरम वर्णन में कवि ने सन्नगरीवर्णन की रूढ़ि का निर्वाह किया है। काव्य का शीर्षक चरितनायक के नाम पर आधारित है, तथा प्रत्येक सर्ग का नामकरण उसमें वर्णित विषय के अनुरूप किया गया है, जिससे विश्वनाथ के महाकाव्यीय विधान की पूर्ति होती है। अन्तिम सर्ग के एक अंश में चित्रकाव्य की योजना करके जैन कवि ने हेमचन्द्र, वाग्भट आदि जैनाचार्यों के विधान का पालन किया है। छन्द प्रयोग सम्बन्धी परम्परागत नियमों का प्रस्तुत काव्य में आंशिक रूप से निर्वाह हुआ है। काव्य के पांच सर्गों में तो प्रत्येक सर्ग में एक छन्द की प्रमुखता है तथा सर्गान्त में छन्द बदल जाता है। यह साहित्याचार्यों के विधान के सर्वथा अनुरूप है। किन्तु शेष सात सर्गों में नाना वृत्तों का प्रयोग शास्त्रीय नियमों का स्पष्ट उल्लंघन है क्योंकि महाकाव्य में छन्दवैविध्य एक-दो सर्गों में ही काम्य माना गया है। महाकाव्यों की मान्य परिपाटी के अनुसार नेमिनाथकाव्य में नगर, पर्वत, प्रभात, वन, दूतप्रेषण (प्रतीकात्मक), युद्ध, सैन्य-प्रयाण, पुत्रजन्म, जन्मोत्सव, षड् ऋतु आदि वर्ण्यविषयों के विस्तृत वर्णन पाये जाते हैं। वस्तुतः काव्य में इन्हीं वस्तुव्यापार वर्णनों का प्राधान्य है।

परम्परागत नियमों के अनुसार महाकाव्य में पांच नाट्यसन्धियों की योजना आवश्यक मानी गयी है। नेमिनाथ महाकाव्य का कथानक यद्यपि अतीव संक्षिप्त है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथापि इसमें पाँचों सन्धियाँ खोजी जा सकती हैं। प्रथम सर्ग में शिवादेवी के गर्भ में जिनेश्वर के अवतरित होने में मुखसन्धि है। इसमें कथानक के फलागम का बीज निहित है तथा उसके प्रति पाठक की उत्सुकता जाग्रत होती है। द्वितीय सर्ग में स्वप्नदर्शन से लेकर तृतीय सर्ग में पुत्रजन्म तक प्रतिमुख सन्धि स्वीकार की जा सकती है, क्योंकि मुखसन्धि में जिस कथाबीज का वपन हुआ था, वह यहाँ कुछ अलक्ष्य रहकर पुत्रजन्म से लक्ष्य हो जाता है। चतुर्थ सर्ग से अष्टम सर्ग तक गर्भसन्धि की योजना मानी जा सकती है। सूतिकर्म, स्नात्रोत्सव तथा जन्मोत्सव में फलागम काव्य के गर्भ में गुप्त रहता है। नवें से ग्यारहवें सर्ग तक एक ओर नेमिनाथ द्वारा वैवाहिक प्रस्ताव स्वीकार कर लेने से मुख्यफल की प्राप्ति में बाधा उपस्थित होती है, किन्तु दूसरी ओर वधूगृह में वध्य पशुओं का करुणक्रन्दन सुनकर उनके निर्वेदग्रस्त होने तथा दीक्षा ग्रहण करने से फलप्राप्ति निश्चित हो जाती है। अतः यहाँ विमर्श सन्धि का सफल निर्वाह हुआ है। ग्यारहवें सर्ग के अन्त में केवलज्ञान तथा बारहवें सर्ग में परम पद प्राप्त करने के वर्णन में निर्वहण सन्धि विद्यमान है। इन शास्त्रीय लक्षणों के अतिरिक्त नेमिनाथ महाकाव्य में महाकाव्योचित रस-व्यंजना, भव्य भावों की अभिव्यक्ति, शैली की मनोरमता तथा भाषा की उदात्तता विद्यमान हैं।

नेमिनाथमहाकाव्य की शास्त्रीयता

नेमिनाथकाव्य पौराणिक महाकाव्य है अथवा इसकी गणना शास्त्रीय शैली के महाकाव्यों में की जानी चाहिये, इसका निश्चयात्मक उत्तर देना कठिन है। इसमें एक ओर पौराणिक महाकाव्यों के तत्त्व वर्तमान हैं, तो दूसरी ओर यह शास्त्रीय महाकाव्यों की विशेषताओं से भूषित है। पौराणिक महाकाव्यों की भाँति इसमें शिवादेवी के गर्भ में जिनेश्वर का अवतरण होता है जिसके फलस्वरूप उसे चौदह स्वप्न दिखाई देते हैं। दिक्कुमारियाँ नवजात शिशु का सूतिकर्म करने के लिये आती हैं। उसका स्नात्रोत्सव इन्द्रद्वारा सम्पन्न होता है। दीक्षा से पूर्व भी वह भगवान् का अभिषेक करता है। पौराणिक शैली के अनुरूप इसमें दो स्वतन्त्र स्तोत्रों का समावेश किया गया है। कतिपय अन्य पद्यों में भी जिनेश्वर का प्रशस्तिगान हुआ है। जिनेश्वर के जन्मोत्सव में देवांगनाएँ नृत्य करती हैं तथा देवगण पुष्पवृष्टि करते हैं। पौराणिक महाकाव्यों की परिपाटी के अनुसार इसमें नारी को जीवन-पथ की बाधा माना गया है। काव्यनायक दीक्षा लेकर केवलज्ञान तथा अन्ततः परमपद प्राप्त करते हैं। उनकी देशना का समावेश भी काव्य में हुआ है।

इन समूचे पौराणिक तत्त्वों के विद्यमान होने पर भी नेमिनाथ काव्य को पौराणिक महाकाव्य मानना न्यायोचित नहीं है। इसमें शास्त्रीय महाकाव्य के लक्षण इतने पुष्ट तथा प्रचुर हैं कि इसकी यत्किंचित पौराणिकता उनके सिन्धु प्रवाह में पूर्णतया मज्जित हो जाती है। ह्रासकालीन शास्त्रीय महाकाव्यकी प्रमुख विशेषता—वर्ण्यविषय तथा अभिव्यंजना शैली में वैषम्य—इसमें भरपूर मात्रा में वर्तमान है। शास्त्रीय महाकाव्यों की भाँति नेमिनाथमहाकाव्य में वस्तुव्यापारों की विस्तृत योजना हुई है। इसकी भाषा में अद्भुत उदात्तता तथा शैली में महाकाव्योचित प्रौढ़ता एवं गरिमा है। चित्रकाव्य की योजना के द्वारा काव्य में चमत्कृति उत्पन्न करने तथा अपना रचनाकौशल प्रदर्शित करने का प्रयास भी कवि ने किया है। अलंकारों का भावपूर्ण विधान, रस, व्यंजना, प्रकृति तथा मानव-सौन्दर्य का हृदयग्राही चित्रण, सुमधुर छन्दों का प्रयोग आदि शास्त्रीय काव्यों की ऐसी विशेषताएँ इस काव्य में हैं कि इसकी शास्त्रीयता में तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता। वस्तुतः नेमिनाथ-महाकाव्य की समग्र प्रकृति तथा वातावरण शास्त्रीय शैली के महाकाव्य के अनुसार है। अतः, इसे शास्त्रीय महाकाव्यों की कोटि में स्थान देना सर्वथा उपयुक्त है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कविपरिचय तथा रचनाकाल

अन्य अधिकांश जैन काव्यों की भाँति कीर्त्तिराज के नेमिनाथमहाकाव्य में कवि प्रशस्ति नहीं है। अतः काव्य से उनके जीवन तथा स्थितिकाल के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं होता। अन्य ऐतिहासिक लेखों के आधार पर उनके जीवनवृत्त का पुनर्निर्माण करने का प्रयास किया गया है। उनके अनुसार कीर्त्तिराज अपने समय के प्रख्यात तथा प्रभावशाली खरतरगच्छीय आचार्य थे। वे संखवालगोत्रीय शाह कोचर के वंशज देपा के कनिष्ठ पुत्र थे। उनका जन्म सम्वत् १४४६ में देपा की पत्नी देवलदे की कुक्षि से हुआ। उनका जन्म नाम देल्हाकुंवर था। देल्हाकुंवर ने चौदह वर्ष की अल्पावस्था में, सम्वत् १४६३ की आषाढ़ बदि एकादशी को दीक्षा ग्रहण की। जिनवर्द्धनसूरि ने आपका नाम कीर्त्तिराज रखा। कीर्त्तिराज के साहित्यगुरु भी जिनवर्द्धनसूरि ही थे। उनकी प्रतिभा तथा विद्वत्ता से प्रभावित होकर जिनवर्द्धनसूरि ने सम्वत् १४७० में वाचनाचार्य पद तथा दस वर्ष पश्चात् जिनभद्रसूरि ने उन्हें मेहवे में उपाध्याय पद पर प्रतिष्ठित किया। पूर्व देशों का विहार करते समय जब कीर्त्तिराज जैसलमेर पधारे, तो गच्छनायक जिनभद्रसूरि ने योग्य जानकर उन्हें सम्वत् १४९७ की माघ शुक्ला दशमी को आचार्य पद प्रदान किया। तत्पश्चात् वे कीर्तिरत्नसूरि के नाम से प्रख्यात हुए। आपके अग्रज लक्खा और केल्हा ने इस अवसर पर पद-महोत्सव का भव्य आयोजन किया। कीर्त्तिराज ७६ वर्ष की प्रौढ़ावस्था में, पच्चीस दिन की अनशन-आराधना के पश्चात् सम्वत् १५२५ वैशाख बदि पंचमी को वीरमपुर में स्वर्ग सिधारे। संघ ने वहां पूर्व दिशा में एक स्तूप का निर्माण कराया जो अब भी विद्यमान है। वीरमपुर, महवे के अतिरिक्त जोधपुर, आबू आदि स्थानों में भी आपकी चरणपादुकाएं स्थापित की गयीं। जयकीर्त्ति और अभयविलासकृत गीतों से ज्ञात होता है कि सम्वत् १८७९, वैशाख कृष्ण दशमी को गड़ाले (बीकानेर का समीपवर्ती नालग्राम) में उनका प्रासाद बनवाया गया था। कीर्त्तिरत्नसूरि के ५१ शिष्य थे। नेमिनाथ काव्य के अतिरिक्त उनके कतिपय स्तवनादि भी उपलब्ध हैं।[1]

नेमिनाथ महाकाव्य उपाध्याय कीर्त्तिराज की रचना है। कीर्त्तिराज को उपाध्याय पद संवत् १४८० में प्राप्त हुआ और सं० १४९७ में वे आचार्य पद पर आसीन होकर कीर्त्तिरत्नसूरि बने। अतः नेमिनाथकाव्य का रचनाकाल संवत् १४८० तथा १४९७ के मध्य मानना सर्वथा न्यायोचित है। सं० १४९५ की लिखी हुई इसकी प्राचीनतम प्रति प्राप्त है और यही इसका रचनाकाल है।

कथानक

नेमिनाथ महाकाव्य के बारह सर्गों में तीर्थंकर नेमिनाथ का जीवनचरित निबद्ध करने का उपक्रम किया गया है। कवि ने जिस परिवेश में जिनचरित प्रस्तुत किया है, उसमें उसकी कतिपय प्रमुख घटनाओं का ही निरूपण सम्भव हो सका है।

च्यवनकल्याणक वर्णन नामक प्रथम सर्ग में यादव राजधानी सूर्यपुर में समुद्रविजय की पत्नी, शिवादेवी के गर्भ में बाईसवें जिनेश के अवतरण का वर्णन है। अलंकारों के विवेकपूर्ण योजना तथा बिम्बवैविध्य के द्वारा कवि सूर्यपुर का रोचक कवित्वपूर्ण चित्र अंकित करने में समर्थ हुआ है। द्वितीय सर्ग में शिवादेवी परम्परागत चौदह स्वप्न देखती है। समुद्रविजय स्वप्नफल बतलाते हैं कि इन स्वप्नों के दर्शन से तुम्हें प्रतापी पुत्र की प्राप्ति होगी जो अपने भुजबल

---

१ विस्तृत परिचय के लिये देखिये श्री अगरचन्द नाहटा तथा भंवरलाल नाहटा द्वारा सम्पादित 'ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह', पृ० ३९-४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से चारों दिशाओं को जीतकर चौदह भुवनों का अधिपति बनेगा। प्रभात वर्णन नामक इस सर्ग के शेषांश में प्रभात का मार्मिक वर्णन हुआ है। तृतीय सर्ग में समुद्रविजय स्वप्नदर्शन का वास्तविक फल जानने के लिये कुशल ज्योतिषियों को निमंत्रित करते हैं। दैवज्ञों ने बताया कि इन चौदह स्वप्नों को देखनेवाली नारी की कुक्षि में ब्रह्मतुल्य जिन अवतीर्ण होते हैं। समय पर शिवा ने एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। चतुर्थ सर्ग में दिक्कुमारियां नवजात शिशु का सूतिकर्म करती हैं। मेरुवर्णन नामक पंचम सर्ग में इन्द्र शिशु को जन्माभिषेक के लिये मेरु पर्वत पर ले जाता है। इसी प्रसंग में मेरु का वर्णन किया गया है। छठे सर्ग में भगवान के स्नात्रोत्सव का रोचक वर्णन है। सातवें सर्ग में चेटियों से पुत्रजन्म का समाचार पाकर समुद्रविजय आनन्द विभोर हो जाता है। वह पुत्र-प्राप्ति के उपलक्ष में राज्य के समस्त बन्दियों को मुक्त कर देता है तथा जीववध पर प्रतिबन्ध लगा देता है। उसने जन्मोत्सव का भव्य आयोजन किया। शिशु का नाम अरिष्टनेमि रखा गया। आठवें सर्ग में अरिष्टनेमि के शारीरिक सौंदर्य तथा परम्परागत छह ऋतुओं का हृदयग्राही वर्णन है। एक दिन नेमिनाथ ने पांचजन्य को कौतुकवश इस वेग से फूँका कि तीनों लोक भय से कम्पित हो गये। कृष्ण को आशंका हुई कि कहीं यह भुजबल से मुझे राज्यच्युत न कर दे, किन्तु उन्होंने श्रीकृष्ण को आश्वासन दिया कि मुझे सांसारिक विषयों में रुचि नहीं है, तुम निर्भय होकर राज्य का उपभोग करो। नवें सर्ग में नेमिनाथ के माता-पिता के आग्रह से श्रीकृष्ण की पत्नियां, नाना युक्तियाँ देकर उन्हें वैवाहिक जीवन में प्रवृत्त करने का प्रयास करती हैं। उनका प्रमुख तर्क है कि मोक्ष का लक्ष्य सुख-प्राप्ति है, किन्तु वह विषय भोग से ही मिल जाये, तो कष्टदायक तप की क्या आवश्यकता? नेमिनाथ उनकी युक्तियों का दृढ़तापूर्वक खण्डन करते हैं। उनका कथन है कि मोक्षजन्य आनन्द तथा विषय-सुख में उतना ही अन्तर है जितना गाय तथा स्नुही के दूध में। विषयभोग से आत्मा तृप्त नहीं हो सकती, किन्तु माता के अत्यधिक आग्रह से वे, केवल उनकी इच्छापूर्ति के लिये गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करना स्वीकार कर लेते हैं। उग्रसेन की लावण्यवती पुत्री राजीमती से उनका विवाह निश्चय होता है। दसवें सर्ग में नेमिनाथ वधूगृह को प्रस्थान करते हैं। यहीं उनको देखने के लिए लालायित पुर-सुन्दरियों का वर्णन किया गया है। वधूगृह में बारात के भोजन के लिये बंधे हुए मरणासन्न निरीह पशुओं का चीत्कार सुनकर उन्हें आत्मग्लानि होती है। और वे विवाह को बीच में ही छोड़कर दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। ग्यारवें सर्ग के पूर्वार्द्ध में अप्रत्याशित प्रत्याख्यान से अपमानित राजीमती का करुण विलाप है। मोह-संयम युद्धवर्णन नामक इस सर्ग के उत्तरार्द्ध में मोह तथा संयम के प्रीतकात्मक युद्ध का अतीव रोचक वर्णन है। पराजित होकर मोह नेमिनाथ के हृदय दुर्ग को छोड़ देता है। जिससे उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। बारहवें सर्ग में यादव केवलज्ञानी प्रभु की वन्दना करने के लिये उज्जयन्त पर्वत पर जाते हैं। जिनेश्वर की देशना के प्रभाव से कुछ दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं तथा कुछ श्रावक धर्म स्वीकार करते हैं। जिनेन्द्र राजीमती को चरित्ररथ पर बैठा कर मोक्षपुरी भेज देते हैं और कुछ समय पश्चात् अपनी प्राण-प्रिया से मिलने के लिये स्वयं भी परम पद को प्रस्थान करते हैं।

नेमिनाथकाव्य का कथानक अत्यल्प है, किन्तु कवि ने उसे विविध वर्णनों, संवादों तथा स्तोत्रों से पुष्ट—पूरित कर बारह सर्गों के विस्तृत आलवाल में आरोपित किया है। यह विस्तार महाकाव्य की कलेवरपूर्ति के लिए भले ही उपयुक्त हो, इससे कथावस्तु का विकासक्रम विशृंखलित हो गया है तथा कथाप्रवाह की सहजता नष्ट हो गयी है। कथानक के निर्वाह की दृष्टि से नेमिनाथमहाकाव्य को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिक सफल नहीं कहा जा सकता। पग-पग पर प्रासंगिक-अप्रासंगिक वर्णनों के सेतु बांध देने से काव्य की कथावस्तु रुक-रुक कर, मन्दगति से आगे बढ़ती है। वस्तुतः, कथानक की ओर कवि का अधिक ध्यान नहीं है। काव्य का अधिकतर भाग वर्णनों से ही आच्छन्न है। कथावस्तु का सूक्ष्म संकेत करके कवि तुरन्त किसी-न-किसी वर्णन में जुट जाता है। कथानक की गत्यात्मकता का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि तृतीय सर्ग में हुए पुत्रजन्म की सूचना समुद्र-विजय को सातवें सर्ग में मिलती है। मध्यवर्ती तीन सर्ग शिशु के सूतिकर्म, जन्माभिषेक आदि के विस्तृत वर्णनों पर व्यय कर दिये गये हैं। तुलनात्मक दृष्टि से यहां यह जानना रोचक होगा कि रघुवंश में द्वितीय सर्ग में जन्म लेकर रघु चतुर्थ सर्ग में दिग्विजय से लौट भी आता है। द्वितीय सर्ग में प्रभात का तथा अष्टम में षड्ऋतु का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। काव्य के शेषांश में भी वर्णनों का बाहुल्य है। इस वर्णनप्राचुर्य के कारण काव्य की अन्विति खण्डित हो गयी है। काव्य के अधिकांश भाग मूल कथा-वस्तु के साथ सूक्ष्म-तन्तु से जुड़े हुए हैं। इसलिये काव्य का कथानक लंगड़ाता हुआ ही चलता है। किन्तु यह स्मरणीय है कि तत्कालीन महाकाव्य-परिपाटी ही ऐसी थी कि मूल कथा के सफल विनियोग की अपेक्षा विषयान्तरों को पल्लवित करने में ही काव्यकला की सार्थकता मानी जाती थी। अतः कीर्त्तिराज को इसका सारा दोष देना न्याय्य नहीं। वस्तुतः, उन्होंने वस्तुव्यापार के इन वर्णनों को अपनी बहुश्रुतता का क्रीडांगन न बना कर तत्कालीन काव्यरूढ़ि के लौहपाश से बचने का श्लाघ्य प्रयत्न किया है।

नेमिनाथमहाकाव्य में प्रयुक्त कतिपय काव्य-रूढ़ियाँ

संस्कृत महाकाव्यों की रचना एक निश्चित ढर्रे पर हुई है जिससे उनमें अनेक शिल्पगत समानताएं दृष्टिगम्य होती हैं। शास्त्रीय मानदंडों के निर्वाह के अतिरिक्त उनमें कतिपय काव्यरूढ़ियों का मनोयोगपूर्वक पालन किया गया है। यहाँ हम नेमिनाथ महाकाव्य में प्रयुक्त दो रूढ़ियों की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक समझते हैं क्योंकि इनका काव्य में विशिष्ट स्थान है तथा ये इन रूढ़ियों के तुलनात्मक अध्ययन के लिये रोचक सामग्री प्रस्तुत करती हैं। प्रथम रूढ़ि का सम्बन्ध प्रभात वर्णन से है। प्रभात वर्णन की परम्परा कालिदास तथा उनके परवर्ती अनेक महाकाव्यों में उपलब्ध है। कालिदास का प्रभात वर्णन आकार में छोटा होता हुआ भी मार्मिकता में बेजोड़ है। माघ का प्रभातवर्णन बहुत विस्तृत है, यद्यपि प्रातःकाल का इस कोटि का अलंकृत वर्णन समूचे साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। अन्य काव्यों में प्रभातवर्णन के नाम पर पिष्टपेषण ही हुआ है। कीर्त्तिराज का यह वर्णन कुछ विस्तृत होता हुआ भी सरसता तथा मार्मिकता से परिपूर्ण है। माघ की भाँति उसने न तो दूर की कौड़ी फेंकी है और न वह ज्ञान-प्रदर्शन के फेर में पड़ा है। उसने तो, कुशल चित्रकार की तरह, अपनी ललित-प्रांजल शैली में प्रातःकालीन प्रकृति के मनोरम चित्र अंकित करके तत्का-लीन सहज वातावरण को अनायास उजागर कर दिया है।[2] मागधों द्वारा राजस्तुति, हाथी के जाग कर भी मस्ती के कारण आंखें न खोलने तथा करवट बदल कर शृङ्खलारव करने[3] और घोड़ों के द्वारा नमक चाटने की रूढ़ि का भी

२ ध्याने मनः स्वं मुनिभिर्विलम्बितं, विलम्बितं कर्कशरोचिषा तमः।
सुष्वाप यस्मिन् कुमुदं प्रभासितं, प्रभासितं पङ्कजबान्धवोपलैः॥ २.४१

३ निद्रासुखं समनुभूय विराय रात्रावुद्भूतशृङ्खलारवं परिवर्त्य पार्श्वम्।
प्राप्य प्रबोधमपि देव! गजेन्द्र एष नोन्मीलयत्यलसनेत्रयुगं मदान्धः॥ २.५४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रसंग में प्रयोग किया गया है। अपनी स्वाभाविकता तथा मार्मिकता के कारण, कीर्तिराज का यह वर्णन संस्कृत-साहित्य के सर्वोत्तम प्रभातवर्णनों से टक्कर ले सकता है।

नायक को देखने को उत्सुक पौर युवतियों के सम्भ्रम तथा तज्जन्य चेष्टाओं का वर्णन करना संस्कृत-महाकाव्यों की एक अन्य बहुप्रचलित रूढि है, जिसका प्रयोग नेमिनाथ काव्य में भी हुआ है। बौद्ध कवि अश्वघोष से प्रारम्भ होकर कालिदास, माघ, हर्ष आदि से होती हुई यह काव्य रूढ़ि कतिपय जैन कवियों की रचनाओं में भी दृष्टिगत होती है। अश्वघोष तथा कालिदास का यह वर्णन, अपने सहज लावण्य से चमत्कृत है। माघ के वर्णन में, उनके अन्य अधिकांश वर्णनों के समान, विलासिता की प्रधानता है। उपाध्याय कीर्त्तिराज का सम्भ्रमचित्रण यथार्थता से ओतप्रोत है, जिससे पाठक के हृदय में पुरसुन्दरियों की त्वरा सहसा प्रतिबिम्बित हो जाती है। नारी के नीवी-स्खलन अथवा अधोवस्त्र के गिरने का वर्णन, इस सन्दर्भ में, प्रायः सभी कवियों ने किया है। कालिदास ने अधीरता को नीवीस्खलन का कारण बता कर मर्यादा की रक्षा की है। माघ ने इसका कोई कारण नहीं दिया जिससे उसकी नायिका का विलासी रूप अधिक मुखर हो गया है। नग्न नारी को जनसमूह में प्रदर्शित करना जैन यति की पवित्रतावादी वृत्ति के प्रतिकूल था, अतः उसने इस रूढि को काव्य में स्थान नहीं दिया। इसके विपरीत काव्य में उत्तरीय-पात का वर्णन किया गया है। शुद्ध नैतिकतावादी दृष्टि से तो शायद यह भी औचित्यपूर्ण नहीं किन्तु नीवीस्खलन की तुलना में यह अवश्य ही क्षम्य है, और कवि ने इसका जो कारण दिया है उससे तो पुरसुन्दरी पर कामुकता का दोष आरोपित ही नहीं किया जा सकता। कीर्त्तिराज की नायिका हाथ के आर्द्र प्रसाधन के मिटने के भय से उत्तरीय को नहीं पकड़ती, और वह उसी अवस्था में गवाक्ष की ओर दौड़ जाती है।

काचित्करार्द्रप्रतिकर्मभङ्गभयेन हित्वा पतदुत्तरीयम्।
मञ्जीरवाचालपदारविन्दा द्रुतं गवाक्षाभिमुखं चचाल ॥
१०।१३

चरित्रचित्रण

नेमिनाथ महाकाव्य के संक्षिप्त कथानक में पात्रों की संख्या भी सीमित है। कथानायक नेमिनाथ के अतिरिक्त उनके पिता समुद्रविजय, माता शिवादेवी, राजीमती, उग्रसेन, प्रतीकात्मक सम्राट् मोह तथा संयम और दूत कैतव ही महाकाव्य के पात्र हैं। परन्तु इन सब की चरित्रगत विशेषताओं का निरूपण करने से कवि को समान सफलता नहीं मिली।

नेमिनाथ

जिनेश्वर नेमिनाथ काव्य के नायक हैं। उनका चरित्र पौराणिक परिवेश में प्रस्तुत किया गया है जिससे उनके चरित्र के कतिपय पक्ष ही उद्घाटित हो सके हैं और उसमें कोई नवीनता भी दृष्टिगत नहीं होती। वे देवोचित विभूति तथा शक्ति से सम्पन्न हैं। उनके धरा पर अवतीर्ण होते ही समुद्रविजय के समस्त शत्रु म्लान हो जाते हैं। दिक्कुमारियाँ उनका सूतिकर्म करती हैं तथा जन्माभिषेक सम्पन्न करने के लिये स्वयं सुरपति इन्द्र जिनगृह में आता है। पाञ्चजन्य को फूँकना तथा शक्तिपरीक्षा में षोडशकला सम्पन्न श्रीकृष्ण को पराजित करना उनकी अनुपम शक्तिमत्ता के प्रमाण हैं।

नेमिनाथ वीतराग नायक हैं। यौवन की मादक अवस्था में भी वैषयिक सुखभोग उन्हें अभिभूत नहीं कर पाते। कृष्णपत्नियाँ नाना प्रलोभन तथा युक्तियाँ देकर उन्हें वैवाहिक जीवन में प्रवृत्त करने का प्रयास करती हैं, किन्तु वे हिमालय की भाँति अडिग तथा अडोल रहते हैं। उनका दृढ़ विश्वास है कि वैषयिक सुख परमार्थ के शत्रु हैं। उनसे आत्मा उसी प्रकार तृप्त नहीं हो सकती जैसे जलराशि से सागर अथवा काठ से अग्नि। उनके विचार में धर्मौषधि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को छोड़ कर कामातुर मूढ ही नारी रूपी औषध का सेवन करता है। वास्तविक सुख इहलोक में ही विद्यमान है।

हितं धर्मौषधं हित्वा मूढाः कामज्वरार्दिताः।
मुखप्रियमपथ्यन्तु सेवन्ते ललनौषधम् ॥ १।२४
आत्मा तोषयितुं नैव शक्यो वैषयिकैः सुखैः।
सलिलैरिव पाथोधिः काष्ठैरिव धनञ्जयः ॥ १।२५
अनन्तमक्षयं सौख्यं भुङ्क्ते नो ब्रह्मसद्मनि।
ज्योतिःस्वरूप एवायं तिष्ठत्यात्मा सनातनः ॥ १।२६

नेमिनाथ पितृवत्सल पुत्र हैं। माता के आग्रह से वे, इच्छा न होते हुए भी केवल उनकी प्रसन्नता के लिए विवाह करना स्वीकार लेते हैं। किन्तु वधू-गृह में भोजनार्थ वध्य पशुओं का आर्त्त स्वर सुनकर उनका निर्वेद प्रबल हो जाता है और वे विवाह से विमुख होकर प्रव्रज्या ग्रहण कर लेते हैं।

समुद्रविजय—यदुपति समुद्रविजय कथानायक नेमिनाथ के पिता हैं। उनमें राजोचित समूचे गुण विद्यमान हैं। वे रूपवान्, शक्तिशाली, ऐश्वर्यसम्पन्न तथा प्रखर मेधावी हैं। उनके गुण अलंकरण मात्र नहीं हैं, वे व्यावहारिक जीवन में उनका उपयोग करते हैं (शक्तेरनुगुणाः क्रियाः १।२६)।

समुद्रविजय तेजस्वी शासक हैं। उनके बन्दी के शब्दों में अग्नि तथा सूर्य का तेज भले ही शान्त हो जाये, उनका पराक्रम सर्वत्र अप्रतिहत है।

विध्यायतेऽम्भसा वह्निः सूर्योऽब्देन पिधीयते।
न केनापि परं राजंस्त्वत्तेजः परिहीयते ॥ ७।२५

सिंहासनारूढ़ होते ही उनके शत्रु निष्प्रभ हो जाते हैं। फलतः शत्रु लक्ष्मी ने उनका इस प्रकार वरण किया जैसे नवयौवना बाला विवाहवेला में पति का (१।३८)। उनका राज्य पाशविक बल पर आधारित नहीं है। केवल क्षमा को नपुंसकता तथा निर्बाध प्रचण्डता को अविवेक मान कर, इन दोनों के समन्वय के आधार पर ही वे राज्य-संचालन करते हैं। 'न खरो न भूयसा मृदुः' उनकी नीति का मूलमन्त्र है।

क्लीबत्वं केवला क्षान्तिश्चण्डत्वमविवेकिता।
द्वाभ्यामतः समेताभ्यां सोऽर्थसिद्धिममन्यत ॥ १।४३

प्रशासन के चारु संचालन के लिये उन्होंने न्यायप्रिय तथा शास्त्रवेत्ता मन्त्रियों को नियुक्त किया है (१।४७)। उनके स्मितकान्त ओष्ठ मित्रों के लिये अक्षय कोश लुटाते हैं तो उनकी भ्रूभंगिमा शत्रुओं पर वज्रपात करती है।

वज्रदण्डायते सोऽयं प्रत्यनीकमहीभुजाम्।
कल्पद्रुमायते कामं पादद्वन्द्वोपजीविनाम् ॥ १।५२

प्रजाप्रेम समुद्रविजय के चरित्र का एक अन्य गुण है। यथोचित कर-व्यवस्था से उसने सहज ही प्रजा का विश्वास प्राप्त कर लिया है।

आकाराय ललौ लोकाद् भागधेयं न तृष्णया। १।४५

समुद्रविजय पुत्रवत्सल पिता हैं। पुत्र-जन्म का समाचार सुनकर उनकी बाछें खिल जाती हैं। पुत्र-प्राप्ति के उपलक्ष्य में वे मुक्तहस्त से धन वितरित करते हैं, बन्दियों को मुक्त कर देते हैं तथा जन्मोत्सव का ठाटदार आयोजन करते हैं, जो निरन्तर बारह दिन तक चलता है।

समुद्रविजय अन्तस् से धार्मिक व्यक्ति हैं। उनका धर्म सर्वोपरि है। आर्हत-धर्म उन्हें पुत्र, पत्नी, राज्य तथा प्राणों से भी अधिक प्रिय है।

प्राणेभ्योऽपि धनेभ्योऽपि योषिद्भ्योऽप्यधिकं प्रियम्।
सोऽमंस्त मेदिनीजानिर्विशुद्धं धर्ममार्हतम् ॥ १।४२

इस प्रकार समुद्रविजय त्रिवर्गसाधन में रत हैं। इस सुव्यवस्था तथा न्यायपरायणता के कारण उनके राज्य में समय पर वर्षा होती है, पृथ्वी रत्न उपजाती है तथा प्रजा चिरजीवी है। और वह स्वयं राज्य को इस प्रकार निश्चिन्त होकर भोगते हैं जैसे कामी कामिनी की कंचन काया को।

काले वर्षति पर्जन्यः सूते रत्नानि मेदिनी।
प्रजाश्चिराय जीवन्ति तस्मिन् भुञ्जति भूतलम् ॥ १।४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समृद्धमभजद्राज्यं स समस्तनयामलम् ।
कामीव कामिनीकायं स समस्तनयामलम् ।। १।४

राजीमती— राजीमती काव्य की अभागी नायिका है। वह शीलसम्पन्न तथा अतुल रूपवती है। उसे नेमिनाथ की पत्नी बनने का सौभाग्य मिलने लगा था, किन्तु क्रूर विधि ने, पलक झपकते ही उसकी नवोदित आशाओं पर पानी फेर दिया। विवाह में भोजनार्थ भावी व्यापक हिंसा से उद्विग्न होकर नेमिनाथ दीक्षा ग्रहण कर लेते हैं। इस अकारण निकरारण से राजीमती स्तब्ध रह जाती है। बन्धुजनों के समझाने-बुझाने से उसके तप्त हृदय को सान्त्वना तो मिलती है, किन्तु उसका जीवन-कोश रीत चुका है। अन्ततः वह केवलज्ञानी नेमिनाथ की देशना से परमपद को प्राप्त करती है।

उग्रसेन— भोजपुत्र उग्रसेन का चरित्र मानवीय गुणों से ओतप्रोत है। वह उच्चकुलप्रसूत नीतिकुशल शासक है। वह शरणागत वत्सल, गुणरत्नों की निधि तथा कीर्तिलता का कानन है। लक्ष्मी तथा सरस्वती, अपना परम्परागत द्वेष छोड़ कर उसके पास एक साथ रहती हैं। विपक्षी नृपगण उसके तेज से भीत होकर कन्याओं के उपहारों से उसका रोष शान्त करते हैं।

अन्य पात्र

शिवादेवी नेमिनाथ की माता है। काव्य में उसके चरित्र का पल्लवन नहीं हुआ है। प्रतीकात्मक सम्राट मोह तथा संयम राजनीतिकुशल शासकों की भांति आचरण करते हैं। मोहराज दूत कैतव को भेजकर संयम नृपति को नेमिनाथ का हृदय दुर्ग छोड़ने का आदेश देता है। दूत पूर्ण निपुणता से अपने स्वामी का पक्ष प्रस्तुत करता है। संयमराज का मन्त्री शुद्ध विवेक दूत की उक्तियों का मुँह-तोड़ उत्तर देता है।

प्रकृति-चित्रण— नेमिनाथकाव्य के विस्तृत फलक पर प्रकृति को व्यापक स्थान प्राप्त हुआ है। वस्तुतः नेमिनाथ महाकाव्य की भावसमृद्धि तथा काव्यमत्ता का प्रमुख कारण इसका मनोरम प्रकृति-चित्रण है। कीर्त्तिराज ने महाकाव्य के अन्य पक्षों की भाँति प्रकृति-चित्रण में भी अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। कालिदासोत्तर महाकाव्यों में प्रकृति के उद्दीपन पक्ष की पार्श्वभूमि में उक्ति वैचित्र्य के द्वारा नायक-नायिकाओं के विलासितापूर्ण चित्र अङ्कित करने की परिपाटी है। प्रकृति के आलम्बन-पक्ष के प्रति वाल्मीकि तथा कालिदास का-सा अनुराग अन्य संस्कृत कवियों में दृष्टिगोचर नहीं होता। कीर्त्तिराज ने यद्यपि विविध शैलियों में प्रकृति का चित्रण किया है, किन्तु प्रकृति के सहज-स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत करने में उनका मन अधिक रमा है और इन स्वभावोक्तियों में ही उनकी काव्यकला का उत्कृष्ट रूप व्यक्त हुआ है।

प्रकृति के आलम्बन पक्ष के चित्रण में कीर्त्तिराज ने सूक्ष्म पर्य्यवेक्षण का परिचय दिया है। वर्ण्यविषय के साथ तादात्म्य स्थापित करने के पश्चात् प्रस्तुत किये गये ये चित्र अद्भुत सजीवता से स्पन्दित हैं। हेमन्त में दिन क्रमशः छोटे होते जाते हैं तथा कुहासा उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। उपमा को सुरुचिपूर्ण योजना के द्वारा कवि ने हेमन्तकालीन इस प्राकृतिक तथ्य का मार्मिक चित्र अङ्कित किया है।

उपययौ शनकैरिह लाघवं दिनगणो खलराग इवानिशम् ।
ववृधिरे च तुषारसमृद्धयोऽनुसमयं सुजनप्रणया इव ।।८।४८

शरत्कालीन उपकरणों का यह स्वाभाविक चित्र मनोरमता से ओतप्रोत है।

आपः प्रसेदुः कलमा विपेचुर्हंसाश्चुकूजुर्जहसुः कजानि ।
सम्भूय सानन्दमिवावतेरुः शरद्गुणाः सर्वजलाशयेषु ।।८।८२

इस श्लेषोपमा में शरत् का समग्र रूप उजागर करने में कवि को आशातीत सफलता मिली है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रसविमुक्तविलोलपयोधरा हसितकाशलसत्पलितांकिता।
क्षरित-पक्विम-शालिकणद्विजा जयति कापि शरज्जरती क्षितौ॥
८।४३

पावस में दामिनी की दमक, वर्षा की अविराम फुहार तथा शीतल बयार मादक वातावरण की सृष्टि करती हैं। पवन झकोरे खाकर मेघमाला, मधुरमन्द्र गर्जना करती हुई गगनांगन में घूमती फिरती है। वर्षाकाल के इस सहज दृश्य को काव्य में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है। उपमा के प्रयोग ने भावाभिव्यक्ति को समर्थता प्रदान की है।

क्षरदभ्रजला कलगर्जिता सचपला चपलानिलनोदिता।
दिवि चचाल नवाम्बुदमण्डली गजघटेव मनोभवभूपतेः॥८।३८

नेमिनाथमहाकाव्य में पशुप्रकृति के भी अभिराम चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। ये एक ओर कवि की सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति के साक्षी हैं और दूसरी ओर उसके पशुजगत् की चेष्टाओं के गहन अध्ययन को व्यक्त करते हैं। हाथी का यह स्वभाव है कि वह रात भर गहरी नींद सोता है। प्रातःकाल जागकर भी वह अलसाई आँखों को मस्ती से मूँदे पड़े रहता है किन्तु बार-बार करवटें बदल कर पाद-श्रृंखला से शब्द करता है जिससे उसके जगने की सूचना गजपालों को मिल जाती है। निम्नोक्त स्वभावोक्ति में यह गजप्रकृति साकार हो उठी है।

निद्रामुखं समनुभूय चिराय रात्रा-
वुद्भूतश्रृङ्खलारवं परिवर्त्य पार्श्वम्।
प्राप्य प्रबोधमपि देव! गजेन्द्र एष
नोन्मीलयत्यलसनेत्रयुगं मदान्धः॥ २।५४

व्याध के मधुरगीत के वशीभूत होकर, अपनी प्रियाओं के साथ वन में चौकड़ी भरते हुए हरिणों का हृदयग्राही चित्र इस प्रकार अङ्कित किया गया है।

कलगीतिनादरसरङ्गवेदिनो हरिणा अमी हरिणलोचने वने।
सह कामिनीभिरलमुत्पतन्ति हे, परिपीतवातपरिणोदिता इव॥
१२।११

ह्रासकालीन महाकाव्य–प्रवृत्ति के अनुसार कीर्त्तिराज ने प्रकृति के उद्दीपन रूप का भी वर्णन अपने काव्य में किया है। उद्दीपन रूप में प्रकृति मानव की भावनाओं को उद्वेलित करती है। प्रस्तुत पंक्तियों में स्मरपटहसदृश घनगर्जना को विलासी जनों की कामाग्नि को प्रदीप्त करते हुए चित्रित किया गया है जिससे वे रणशूर कामरण में पराजित होकर प्राणवल्लभाओं की मनुहार करने में प्रवृत्त हो जाते हैं।

स्मरपतेः पटहानिव वारिदान्
निनदतोऽथ निशम्य विलासिनः।
समदना न्यपतन्नवकामिनी-
चरणयो रणयोगविदोऽपि हि॥ ८।३७

उद्दीपन पक्ष के इस वर्णन में प्रकृति पृष्ठभूमि में चली गयी है और प्रेमी युगलों का भोग-विलास प्रमुख हो गया है, किन्तु परम्परा से ऐसे वर्णनों की गणना उद्दीपन के अन्तर्गत ही की जाती है।

प्रियकरः कठिनस्तनकुम्भयोः प्रियकरः सरसार्तवपल्लवैः।
प्रियतमां समबीजयदाकुलां नवरतां वरतान्तलतागृहे॥
८।२३

नेमिनाथ काव्य में प्रकृति का मानवीकरण भी हुआ है। प्रकृति पर मानवीय भावनाओं तथा कार्यकलापों का आरोप करने से वह मानव की भाँति आचरण करती है। प्रातःकाल सूर्य के उदित होते ही कमलिनी विकसित हो जाती है और भ्रमरगण उसका रसपान करने लगते हैं इसका चित्रण कवि ने सूर्य पर नायक, कमलिनी में नायिका तथा भ्रमरगण पर परपुरुष का आरोप करके किया है। अपनी प्रेयसी को पर पुरुषों से चुम्बित देख कर सूर्य क्रोध से लाल हो जाता है तथा कठोर पादप्रहार से उस व्यभि-चारिणी को दण्डित करता है।

यत्र भ्रमद्भ्रमरचुम्बिताननां-
मवेक्ष्य कोपादिव मूर्ध्नि पद्मिनीम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वप्रेयसीं लोहितमूर्तिमावहन्

कठोरपादैर्निजघान तापनः ॥ २।४२

निम्नलिखित पद्य में लताओं को प्रगल्भा नायिकाओं के रूप में चित्रित किया गया है जो पुष्पवती होती हुई भी तरुणों के साथ बाह्य रति में लीन हो जाती हैं।

कोमलाङ्ग्यो लताकान्ताः प्रवृत्ता यस्य कानने।

पुष्पवत्योऽप्यहो चित्रं तरुणालिङ्गनं व्यधुः ॥ १।३१

कतिपय स्थलों पर प्रकृति का आदर्श रूप चित्रित किया गया है। ऐसे प्रसंगों में प्रकृति निसर्गविरुद्ध आचरण करती है। जिनजन्म के अवसर पर प्रकृति ने अपनी स्वभावगत विशेषताओं को छोड़ कर आदर्श रूप प्रकट किया है।

सपदि दशदिशोऽत्रामेयनैर्मल्यमापुः

समजनि च समस्ते जीवलोके प्रकाशः ॥

अपि ववुरनुकूला वायवो रेणुवर्ज

विलयमगमदापद् दौस्थ्यदुःखं पृथिव्याम् ॥ ३।३६

प्रकृतिचित्रण में कीर्त्तिराज ने परिगणनात्मक शैली का भी आश्रय लिया है। निम्नोक्त पद्य में विभिन्न वृक्षों के नामों की गणना मात्र कर दी है।

सहकारएष खदिरोऽयमर्जुनोऽयमिमौ पलाशबकुलौ सहोद्गतौ।

कुटजावमू सरल एष चम्पको मदिराक्षि शैलविपिने गवेष्यताम् ॥

१२।१३

काव्य में एक स्थान पर प्रकृति स्वागतकर्त्री के रूप में प्रकट हुई है।

रचयितुं ह्यु चितामतिथिक्रियां पथिकमाह्वयतीव सगौरवम्।

कुसुमिता फलिताम्रवणावली सुवयसां वयसां कलकूजितैः ॥

८।१८

इस प्रकार कीर्तिराज ने प्रकृति के विविध रूपों का चित्रण किया है। ह्रासकालीन संस्कृत महाकाव्यकारों की भाँति उन्होंने प्रकृति चित्रण में यमक की योजना की है किन्तु उनका यमक न केवल दुरूहता से मुक्त है अपितु इससे प्रकृति वर्णनों की प्रभावशालिता में वृद्धि हुई है।

सौन्दर्य चित्रण—कीर्तिराज ने काव्य के कतिपय पात्रों के कायिक सौन्दर्य का हृदयहारी चित्रण किया है, परन्तु उनकी कला की सम्पदा राजीमती तथा देवांगनाओं के चित्रों को ही मिली है। सौन्दर्य-चित्रण में अधिकतर नखशिखप्रणाली का आश्रय लिया गया है जिसके अन्तर्गत वर्ण्य पात्र के अंगों-प्रत्यंगों का सूक्ष्म वर्णन किया जाता है। कवि ने बहुधा परम्परामुक्त उपमानों के द्वारा अपने पात्रों का सौन्दर्य व्यक्त किया है किन्तु उपमानयोजना में उपमेय-सादृश्य का ध्यान रखने से उनके सौन्दर्य चित्रों में सहज आकर्षण तथा सजीवता का समावेश हो गया है। जहाँ नवीन उपमानों का प्रयोग किया गया है वहाँ काव्य-कला में अद्भुत भावप्रेषणीयता आ गयी है। निम्नोक्त पद्य में देवांगनाओं की जघनस्थली को कामदेव की आसनगद्दी कह कर उसकी पुष्टता तथा विस्तार का सहज भान करा दिया गया है।

वृता दुकूलेन सुकोमलेन विलग्नकाञ्चीगुणजात्यरत्ना।

विभाति यासां जघनस्थली सा मनोभवस्यासनगन्दिकेव ॥

६।४७

इसी प्रकार राजीमती की जंघाओं को कदलीस्तम्भ तथा कामगज के आलान के रूप में चित्रित करके एक ओर उनकी सुडौलता तथा शीतलता को व्यक्त किया गया है तो दूसरी ओर, उनकी वशीकरण क्षमता को उजागर कर दिया गया है।

बभावूरुयुगं यस्याः कदलीस्तम्भकोमलम्।

आलान इव दुर्दान्त-मीनकेतनहस्तिनः ॥ ६।५५

नेमिनाथ महाकाव्य में उपमान की अपेक्षा उपमेय अंगों का वैशिष्ट्य बताकर, व्यतिरेक के द्वारा भी पात्रों का लोकोत्तर सौन्दर्य चित्रित किया गया है। राजीमती की मुखमाधुरी से परास्त लावण्यनिधि चन्द्रमा को, लज्जावश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुंह छिपाने के लिये, गगनांगन में मारा-मारा फिरता हुआ चित्रित करके नवयौवना राजीमती के सर्वातिशायी मुख-सौन्दर्य को मूर्त कर दिया है।

यस्या वस्त्रेण जितः शंके लाघवं प्राप्य चन्द्रमाः ।
तुलवद्वायुनोत्क्षिप्तो बम्भ्रमीति नभस्तले ॥६।५२

रसयोजना

शास्त्रीय विधान के अनुसार महाकाव्य में शृङ्गार, वीर तथा शान्त में से किसी एक रस की प्रधानता होनी चाहिए। नेमिनाथ महाकाव्य में शृङ्गार का अङ्गी रस के रूप में पल्लवन हुआ है। वीर, रौद्र, करुण आदि शृङ्गार रस के पोषक बन कर आए हैं। ऋतुवर्णन के प्रसंग में शृङ्गार के अनेक रमणीक चित्र दृष्टिगत होते हैं।

स्मरपतेः पटहानिव वारिदान् निनदतोऽथ निशम्य विलासिनः ।
समदना न्यपतन्नवकामिनीचरणयोः रणयोगविदोऽपि हि ॥
८।३७

यहाँ नायक की नायिकाविषयक रति स्थायीभाव है। प्रमदा आलम्बन विभाव है। कामदुन्दुभितुल्य मेघगर्जना उद्दीपन विभाव है। रणजेता नायक का मानभंजन के निमित्त नायिका के चरणों में गिरना अनुभाव है। औत्सुक्य, मद आदि व्यभिचारी भाव हैं। इन विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों से पुष्ट होकर नायक का स्थायीभाव शृङ्गार के रूप में निष्पन्न हुआ है।

निम्नोक्त पद्य में शृंङ्गाररस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

उपवने पवनेरितपादपे नवतरं बत रन्तुमनाः परा ।
सकरुणा करुणावचये प्रियं प्रियतमा यतमानमवारयत् ॥८।२२

पांचवें सर्ग में सहसा सिंहासन के प्रकम्पित होने से क्रोधोन्मत्त हुए इन्द्र के वर्णन में रौद्र रस का भव्य चित्रण हुआ है।

ललाटपट्टं भ्रुकुटीभयानकं भ्रुवौ भुजंगाविव दारुणाकृती ।
दृशः कराला ज्वलिताग्निकुण्डखण्डायमानाभं मुखमादधेऽसौ॥
ददंश दन्तै रुषया हरिर्निजौ रसेन शच्या अधराविवाधरौ ॥
प्रस्फोटयामास करावितस्ततः क्रोधद्रुमस्योल्बणपल्लवाविव ॥
५।३-४

यहां इन्द्र का हृद्गत क्रोध स्थायीभाव है। अज्ञात जिनेश्वर आलम्बन विभाव है। सिंहासन का अकस्मात कांपना उद्दीपन विभाव है। ललाट पर भृकुटि का प्रकट होना, भौंहों का तनना, नेत्रों का अग्निकुण्ड की भांति अग्निवर्षा करना, अधरों का काटना तथा हाथों का स्फोटन अनुभाव हैं। अमर्ष, आक्षेप, उग्रता आदि संचारी भाव हैं। इनके संयोग से क्रोध रौद्र रस के रूप में व्यक्त हुआ है।

प्रतीकात्मक सम्राट मोह के दूत तथा संयमराज के नीतिनिपुण मन्त्री विवेक की उक्तियों के अन्तर्गत, ग्यारहवें सर्ग में, वीररस की कमनीय झांकी देखने को मिलती है।

यदि शक्तिरिहास्ति ते प्रभोः प्रतिगृह्णातु तदा तु तान्यपि ।
परमेष विलोलजिह्वया कपटी भापयते जगज्जनम् ॥११।४४

मन्त्री विवेक का उत्साह यहाँ स्थायी भाव के रूप में वर्तमान है। मोहराज आलम्बन है। उसके दूत की कटूक्तियाँ उद्दीपन का काम करती हैं। मन्त्री का विपक्ष को चुनौती देना तथा मोह की वाचालता का मजाक उड़ाना अनुभाव हैं। धृति, गर्व, तर्क आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार वीररस के समूचे उपकरण यहां विद्यमान हैं।

इसी सर्ग में अप्रत्याशित प्रत्याख्यान से शोकतप्त राजीमती के विलाप में करुणरस की सृष्टि हुई है।

अथ भोजनरेन्द्रपुत्रिका प्रविमुक्ता प्रभुणा तपस्विनी ।
व्यलपद्गलदश्रुलोचना शिथिलांगा लुठिता महीतले ॥११।१

राजीमती का निराकरणजन्य शोक स्थायीभाव है। नेमिनाथ आलम्बन विभाव हैं। विवाह से अचानक विरत होकर उनका प्रव्रज्या ग्रहण कर लेना उद्दीपन विभाव है। पृथ्वी पर लोटना, अंगों का शिथिल होना तथा आंसू

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहाना अनुभाव हैं। विषाद, चिन्ता, स्मृति आदि व्यभिचारी भाव हैं। इनसे सम्बृद्ध होकर राजीमती के शोक की अभिव्यक्ति करुण रस के रूप में हुई है।

इस प्रकार कीर्त्तिराज ने काव्य में रसात्मक प्रसंगों के द्वारा पात्रों के मनोभावों को वाणी प्रदान की है तथा काव्य सौन्दर्य को प्रस्फुटित किया है।

भाषा

नेमिनाथ महाकाव्य की सफलता का अधिकांश श्रेय इसकी प्रसादपूर्ण प्रांजल भाषा को है। विद्वत्ताप्रदर्शन, उक्तिवैचित्र्य, अलंकरणप्रियता आदि समकालीन प्रवृत्तियों के प्रबल आकर्षण के समक्ष आत्मसमर्पण न करना कीर्त्तिराज की मौलिकता तथा सुरुचि का द्योतक है। नेमिनाथ महाकाव्य की भाषा महाकाव्योचित गरिमा तथा प्राणवत्ता से मण्डित है। कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है किन्तु अनावश्यक अलंकरण की ओर उसकी प्रवृत्ति नहीं। इसीलिये उसके काव्य में भावपक्ष तथा कलापक्ष का मनोरम समन्वय दृष्टिगत होता है। नेमिनाथ महाकाव्य की भाषा की मुख्य विशेषता यह है कि वह, भाव तथा परिस्थिति के अनुसार स्वतः अपना रूप परिवर्तित करती जाती है। फलस्वरूप वह कहीं माधुर्य से तरलित है तो कहीं ओज से प्रदीप्त। भावानुकूल शब्दों के विवेकपूर्ण चयन तथा कुशल गुम्फन से ध्वनिसौन्दर्य की सृष्टि करने में कवि ने सिद्धहस्तता का परिचय दिया है। अनुप्रास तथा यमक के सुरुचिपूर्ण प्रयोग से उनके काव्य के माधुर्य में रचनात्मक झंकृति का समावेश हो गया है। निम्नलिखित पद्य में यह विशेषता भरपूर मात्रा में विद्यमान है।

गुरुणा च यत्र तरुणाऽगुरुणा वसुधा क्रियेत सुरभिर्वसुधा।
कमनातुरैति रमणैकमना रमणी सुरस्य शुचिहारमणी ॥५।५६

शृङ्गार आदि कोमल भावों के चित्रण की पदावली माखन-सी मृदुल, सौन्दर्य-सी सुन्दर तथा यौवन-सी मादक है। ऐसे प्रसंगों में सर्वत्र अल्पसमास वाली पदावली का प्रयोग हुआ है। नवें सर्ग में भाषा के ये समस्त गुण देखे जा सकते हैं।

विवाहय कुमारेन्द्र ! बालाश्चञ्चललोचनाः।
भुङ्क्ष्व भोगान् समं ताभिरप्सरोभिरिवामरः॥
रूप-सौन्दर्य-सम्पन्नां शीलालङ्कारधारिणीम्।
झरल्लावण्य-पीयूष-सान्द्र-पीनपयोधराम्॥
हेमाब्जगर्भगौराङ्गीं मृगाक्षीं कुलबालिकाम्।
ये नोपभुञ्जते लोका वेधसा वञ्चिता हि ते॥
संसारे सारभूतो यः किलायम्प्रमदाजनः।
योऽसारश्चेत्तवाभाति गर्दभस्य गुणोपमः ॥९।१२-१५

शार्दूलविक्रीडित जैसे विशालकाय छन्द में भाषा के माधुर्य को यथावत् सुरक्षित रखना कवि की बहुत बड़ी उपलब्धि है—

पुण्याढ्यं कमला यथा निजपतिं योषाः सुशीला यथा
सूत्रार्थं विशदा यथा त्रिवृतयस्तारा यथा शीतगुम्।
पुंसां कर्म यथा धियश्च हृदयं खानां यथा वृत्तयः
सानन्दं कुलकोटयः किल यदूनामन्वगुस्तं तथा॥
१०।१०

यद्यपि समस्त महाकाव्य प्रसादगुण की माधुरी से ओत-प्रोत है, किन्तु सातवें सर्ग में प्रसाद का सर्वोत्तम रूप दीख पड़ता है। इसमें जिस सहज, सरल तथा सुबोध भाषा का प्रयोग हुआ है, उस पर साहित्यदर्पणकार की यह उक्ति "चित्तं व्याप्नोति यः क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवानलः' अक्षरशः चरितार्थ होती है।

बभौ राज्ञः सभास्थानं नानाविच्छित्तिसुन्दरम्।
प्रभोर्जन्ममहो द्रष्टुं स्वर्विमानमिवागतम् ॥७।१३
अनेकैः स्वार्थमिच्छद्भिर्विनीपकावनीपकैः।
राजमार्गस्तदाकीर्णः खगैरिव फलद्रुमः॥ ७।१५

नीतिकथन की भाषा सबसे सरल है। नवें सर्ग में नेमिनाथ की नीतिपरक उक्तियाँ भाषा को इसी सरलता, मसृणता तथा कोमलता से युक्त हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हितं धर्मौषधं हित्वा मूढाः कामज्वरार्दिताः ।
मुखप्रियमपथ्यन्तु सेवन्ते ललनौषधम् ॥६।२४
आत्मा तोषयितुं नैव शक्यो वैषयिकैः सुखैः ।
सलिलैरिव पाथोधिः काष्ठैरिव धनञ्जयः ।६।२५

किन्तु क्रोध तथा युद्ध के वर्णन में भाषा ओज से परिपूर्ण हो जाती है। ओजव्यंजक कठोर शब्दों के द्वारा यथेष्ट वातावरण का निर्माण करके कवि ने भावव्यंजना को अतीव समर्थ बना दिया है। मोह तथा संयम के युद्ध वर्णन में भाषा की यह शक्तिमत्ता वर्त्तमान है।

रणतूर्यरवे समुत्थिते भटहक्कापरिगर्जितेऽम्बरे ।
उभयोर्बलयोः परस्परं परिलग्नोऽथ विभीषणो रणः ॥११।७६

पांचवें सर्ग में इन्द्र के क्रोधवर्णन में जिस पदावली की योजना की गयी है, वह अपने वेग तथा नाद से हृदय में ओज का संचार करती है। इस दृष्टि से यह पद्य विशेष दर्शनीय है।

विपक्षपक्षक्षयबद्धकक्ष विद्युल्लतानामिव सञ्चयं तत् ।
स्फुरत्स्फुलिङ्गं कुलिशं करालं ध्यात्वेति यावत्स जिघृक्षतिस्म
॥ ५।६

कीर्त्तिराज की भाषा में बिम्ब निर्माण की पूर्ण क्षमता है। सम्भ्रम के चित्रण में भाषा त्वरा तथा वेग से पूर्ण है। देवसभा के इस वर्णन में, उपयुक्त शब्दावली के प्रयोग से सभासदों की इन्द्रप्रयाणजन्य आकुलता साकार हो उठी है।

दृष्टिं ददाना सकलासु दिक्षु किमेतदित्याकुलितं ब्रुवाणा ।
उत्थानतो देवपतेरकस्मात् सर्वापि चुक्षोभ सभा सुधर्मा ॥
५।१८

नेमिनाथ काव्य में यत्र-तत्र मधुर सूक्तियों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है जो इसकी भाषा की लोकसम्पृक्ति को सूचक हैं तथा काव्य की प्रभावकारिता को वृद्धिगत करती हैं। कतिपय मार्मिक सूक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं।

१—ह्री प्रेम तद्यद्वशवर्तिचित्तः प्रत्येति दुःखं सुखरूपमेव
।२।४३

२—विचार्य वाचं हि वदन्ति धीराः ।३।१८

३—उच्चैः स्थितिर्वा क्व भवेज्जडानाम् । ६।१३

४—स्थानं पवित्राः क्व न वा लभन्ते । ६।३३

५—जनोऽभिनवे रमतेऽखिलः । ८।३

६—काले रिपुमप्याश्रयेत्सुधीः । ८।४६

७—सकलोऽप्युदितं श्रयतीह जनः । ८।५३

८—पित्रोः सुखायैव प्रवर्तन्ते सुनन्दनाः । ६।३४

६—शुद्धिर्न तपो विनात्मनः । ११।२३

१०—नहि कार्या हितदेशना जड़े । ११।४८

११—नहि धर्मकर्मणि सुधीर्विलम्बते । १२।२

इन बहुमूल्य गुणों से भूषित होती हुई भी नेमिनाथ-काव्य की भाषा में कतिपय दोष हैं, जिनकी ओर संकेत न करना अन्यायपूर्ण होगा। काव्य में कुछ ऐसे स्थलों पर विकट समासान्त पदावली का प्रयोग किया गया है जहाँ उसका कोई औचित्य नहीं है। युद्धादि के वर्णन में तो समासबहुला शैली अभीष्ट वातावरण के निर्माण में सहायक होती है, किन्तु मेरुवर्णन के प्रसंग में इसकी क्या सार्थकता है?

भित्तिप्रतिज्वलदनेकमनोज्ञरत्ननिर्यन्मयूखपटलीसतत प्रकाशाः ।
द्वारेषु निर्मकरपुष्करिणीजलोर्मिमूर्द्धन्महमुषितयात्रिकगात्रधर्माः
॥ ५।५२

इसके अतिरिक्त नेमिनाथ महाकाव्य में यत्र-तत्र, छन्द-पूर्ति के लिये बलात् अतिरिक्त पदों का प्रयोग किया गया है। स्वकान्तरक्ताः के पश्चात् 'शुचयः' तथा 'पतिव्रताः' (२।३६) का, शुक के साथ 'वि' का (२।५८) मराल के साथ खग का (२।५६), विशारद के साथ 'विशेष्यजन' का (१११।६) तथा वदन्ति के साथ 'वाचम्' का (३।१८) प्रयोग सर्वथा आवश्यक नहीं है। इनसे एक ओर, इन स्थलों पर,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कवि की छन्द प्रयोग में असमर्थता व्यक्त होती है, दूसरी ओर, यहाँ वह काव्यदोष आ गया है, जो साहित्यशास्त्र में 'अधिक' नाम से ख्यात है ।

नेमिनाथ काव्य में कतिपय देशी शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। बीच के लिये विचाल, गद्दी के लिये गन्दिका; माली के लिये मालिक: उल्लेखनीय हैं। इनमें से 'विचाल' शब्द कुछ उच्चारण भिन्नता के साथ, पंजाबी में अब भी प्रचलित है।

नेमिनाथ महाकाव्य की भाषा में निजी आकर्षण है। वह प्रसंगानुकुल, प्रौढ़, सहज तथा प्रांजल है। निस्सन्देह इससे संस्कृत-साहित्य गौरवान्वित हुआ है।

पाण्डित्यप्रदर्शन तथा शाब्दी क्रीड़ा

कीर्त्तिराज ने बारहवें सर्ग में चित्रालकारों के द्वारा काव्य में चमत्कृति लाने तथा पाण्डित्य प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है। सौभाग्यवश एसे पद्यों की संख्या बहुत कम है। सम्भवत: इन पद्यों के द्वारा वे बतला देना चाहते हैं कि मैं समवर्ती काव्यशैली से अनभिज्ञ अथवा चित्रकाव्य की रचना करने में असमर्थ नहीं हुँ, किन्तु अपनी सुरुचि के कारण मुझे वह ग्राह्य नहीं है। ऐसे स्थलों पर भाषा के साथ मनमाना खिलवाड़ किया गया है जिससे उसमें दुरूहता तथा क्लिष्टता का समावेश हो गया है।

निम्नलिखित पद्य में केवल दो अक्षरों, 'ल' तथा क, का प्रयोग हुआ है।

लुलल्लीलाकलाकेलिकीला केलिकलाकुलम् ।
लोकालोकाकलं कालं कोकिलालिकुलालका ॥ १२।३६

इस पद्य की रचना में केवल एक व्यञ्जन तथा तीन स्वरों का आश्रय लिया गया है।

अतीतान्तेन एतां ते तन्तन्तु ततताततिम् ।
ऋततां तां तु तोतोत्तु तातोऽततां ततोऽन्ततुत् ॥ १२।३७

निम्नोक्त पद्य की रचना अनुलोम विलोमात्मक विधि से हुई है। अत: यह प्रारम्भ तथा अन्त से एक समान पढ़ा जा सकता है।

तुद मे ततदम्भरवं त्वं भदन्ततमेद तु ।
रक्ष तात ! विशामीश ! शमीशावितताक्षर ॥ १२।३८

प्रस्तुत दो पद्यों की पदावली में पूर्ण साम्य है, किन्तु पदयोजना तथा विग्रह के वैभिन्य के आधार पर इनसे दो भिन्न-भिन्न अर्थ निकाले गये हैं।

महामद भवाऽऽरागहरिं विग्रहहारिणम् ।
प्रमोदजाततारेनं श्रेयस्करं महासकम् ॥ १२।४१
महाम दम्भवारागहरिं विग्रहहारिणम् ।
प्रमोदजाततारेनं श्रेयस्करं महासकम् ॥ १२।४२

ये पद्य विद्वत्ता को चुनौती हैं। टीका के बिना इनका वास्तविक अर्थ समझना विद्वानों के लिये भी सम्भव नहीं। ये रसचर्वणा में भले ही बाधक हों, इनसे कवि का अगाध पाण्डित्य, रचनाकौशल तथा भाषाधिकार व्यक्त होता है। माघ, वस्तुपाल आदि की भाँति पूरे सर्ग में इन कलाबाजियों का सन्निवेश न करके कीर्त्तिराज ने अपने पाठकों को बौद्धिक व्यायाम से बचा लिया है।

अलंकारविधान- अलङ्कारयोजना में भी कीर्त्तिराज की मौलिक सूझ-बूझ का परिचय मिलता है। नेमिनाथ काव्य में शब्दालङ्कार तथा अर्थालंकार दोनों का व्यापक प्रयोग हुआ है, किन्तु भावों का गला घोंट कर बरबस अलंकार ठूँसने का प्रयत्न कीर्त्तिराज ने कहीं नहीं किया है। उनके काव्य में अलंकार इस सहजता से प्रयुक्त हुए हैं कि उनसे काव्यसौन्दर्य स्वतः प्रस्फुटित होता जाता है। नेमिनाथमहाकाव्य के अलंकार भावाभिव्यक्ति को समर्थ बनाने में पूर्णतया सक्षम हैं।

अन्त्यानुप्रास की स्वाभाविक अवतारणा का एक उदाहरण देखिये—

जगज्जनानन्दथुमन्दहेतुर्जगत्त्रयक्लेशसेतु: ।
जगत्प्रभुर्यादववंशकेतुर्जगत्पुनाति स्म स कम्बुकेतु: ॥३।३७

शब्दालंकारों में यमक का काव्य में प्रचुर प्रयोग किया गया है। यमक की सुरुचिपूर्ण योजना श्रृङ्गार-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माधुरी को वृद्धिगत करने में सहायक हुई है।

वनितयाऽनितया रमणं कयाऽप्यमलया मलयाचलमारुतः।
धुत-लता-तल-तामरसोऽधिको नहि मतो हिमतो विषतोऽपिना॥ ८।२१

नेमिनाथमहाकाव्य में श्लोकार्धयमक को भी विस्तृत स्थान मिला है, किन्तु कीर्त्तिराज के यमक की विशेषता यह है कि वह सर्वत्र दुरूहता तथा क्लिष्टता से मुक्त है।

पुण्य ! कोपचयदं नतावकं पुण्यकोपचयदं न तावकम्।
दर्शनं जिनप ! यावदीक्ष्यते तावदेव गदःस्थतादिकम्॥१२।३३

अर्थालंकारों का प्रयोग भी भावाभिव्यक्ति को सघन बनाने के लिये किया गया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, रूपक, अर्थान्तरन्यास, समासोक्ति, अतिशयोक्ति, उल्लेख आदि की विवेकपूर्ण योजना से काव्य में अद्भुत भाव प्रेषणीयता आ गयी है। जिनेश्वर के स्नात्रोत्सव के प्रसंग में मूर्त की अमूर्त से उपमा का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

देवता अथ शिवां सनन्दनां निन्यिरे धनददिङ्निकेतनम्।
धर्मशास्त्रसहितां मतिं गिरः सद्गुरोरिव विनेयमानसम्॥ ४।४८

प्रस्तुत पद्य में उत्प्रेक्षा की मार्मिक अवतारणा हुई है।

पवमानचञ्चलदलं जलाशये रवितेजसा स्फुटदिदं पयोरुहम्।
परिशंक्यते बत मया तवाननात् कमलाक्षि ! बिभ्यदिव कम्पतेतराम्॥ १२।१९

रूपक का सफल प्रयोग निम्नोक्त पंक्तियों में दृष्टिगत होता है।

रात्रि-स्त्रिया मुग्धतया तमोऽञ्जनै
दिग्धानि काष्ठातनयामुखान्यथ।
प्रक्षालयत्पूषमयूखपायसा
देव्या विभातं ददृशे स्वतातवत्॥ २।३०

कृष्णपत्नियां नेमिनाथ को जिन युक्तियों से वैवाहिक जीवन में प्रवृत्त करने का प्रयास करती हैं, उनमें, एक स्थान पर, दृष्टान्त की भावपूर्ण योजना हुई है।

किञ्च पित्रोः सुखायैव प्रवर्तन्ते सुनन्दनाः।
सदा सिन्धोः प्रमोदाय चन्द्रो व्योमावगाहते॥ ६।३४

शरद्वर्णन में मदमत्त वृषभ के आचरण की पुष्टि एक सामान्य उक्ति से करते हुए अर्थान्तरन्यास का प्रयोग किया गया है।

मदोत्कटा विदार्य भूतलं वृषाक्षिपन्ति यत्र मतस्के रजो निजे।
अयुक्त-युक्त-कृत्य-संविचारणां विदन्ति किं कदा मदान्धबुद्धयः॥ ३।४४

जिनेश्वर की लोकोत्तर विलक्षणता का चित्रण करते समय कवि की कल्पना अतिशयोक्ति के रूप में प्रकट हुई है।

यद्यर्कदुग्धं शुचिगोरसस्य प्राप्नोति साम्यं च विषं सुधायाः।
देवान्तरं देव ! तदा त्वदीयां तुल्यां दधाति त्रिजगत्प्रदीपः॥ ६।३५

इनके अतिरिक्त परिसंख्या, वक्रोक्ति, विरोधाभास, सन्देह, असंगति, विषम, सहोक्ति, निदर्शना, पर्यायोक्ति, व्यतिरेक, विभावना आदि अलंकार नेमिनाथ काव्य के सौन्दर्य में वृद्धि करते हैं। इनमें से कुछ के उदाहरण यहां दिये जाते हैं।

परिसंख्या— न मन्दोऽत्र जनः कोऽपि परं मन्दो यदि ग्रहः।
वियोगो नापि दम्पत्योर्वियोगस्तु परं वने॥१।१७

सन्देह— पिशङ्गवासाः किमयं नारायणः ?
सुवर्णकायः किमयं विहङ्गमः ?
सविस्मयं तर्कितमेवमादितः
सिंहं स्फुरत्काञ्चनचारुकेसरम् ? २५

वक्रोक्ति— देवः प्रिये ! को वृषभोऽयि ! किं गौः ?
नैवं वृषांकः ? किमु शंकरो ? न।
जिनो तु चक्रीति वधूवराभ्यां
यो वक्रमुक्तः स मुदे जिनेन्द्रः॥३।१२

असंगति— गन्धसार-घनसार-विलेपं
कन्यका विदधिरेऽथ तदंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कौतुकं महदिदं यदमूषामप्यनश्यदखिलो खलु तापः ॥४।४४

विरोधाभास—दिग्देव्योऽपि रसलीनाः सभ्रमा अप्यविभ्रमाः।
वामा अपि च नो वामा भूषिता अप्यभूषिताः ॥४।१६

पर्यायोक्ति—रणरात्रौ महीनाथ ! चन्द्रहासो विलोक्यते।
वियुज्यते स्वकान्ताभ्यश्चक्रवाकैरिवारिभिः ॥ ८।२७

विषम – मोदकः क्वाैव शश्चात्र क्व सर्पिःखण्डमोदकः।
क्वेदं वैषयिकं सौख्यं क्व चिदानन्दजं सुखम् ॥९।२२

छन्दयोजना

भावव्यंजक छन्दों के प्रयोग में कीर्त्तिराज पूर्णतः सिद्ध-हस्त हैं। उनके काव्य में अनेक छन्दों का उपयोग किया गया है। प्रथम, सप्तम तथा नवम सर्ग में अनुष्टुप् की प्रधानता है। प्रथम सर्ग के अन्तिम दो पद्य मालिनी तथा उपजाति छन्द में हैं, सप्तम सर्ग के अन्त में मालिनी का प्रयोग हुआ है और नवम सर्ग का पैंतालीसवां तथा अन्तिम पद्य क्रमशः उपगीति तथा नन्दिनी में निबद्ध है। ग्यारहवें सर्ग में वैतालीय छन्द अपनाया गया है। सर्गान्त में उप-जाति तथा मन्दाक्रान्ता का उपयोग किया गया है। तृतीय सर्ग की रचना उपजाति में हुई है। अन्तिम दो पद्यों में मालिनी का प्रयोग हुआ है। शेष सात सर्गों में कवि ने नाना वृत्तों के प्रयोग से अपना छन्दज्ञान प्रदर्शित करने की चेष्टा की है। द्वितीय सर्ग में उपजाति (वंशस्थ इन्द्रवंशा), इन्द्रवंशा, वंशस्थ, इन्द्रवज्रा, उपजाति (इन्द्रवज्रा उपेन्द्रवज्रा), वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित तथा शालिनी, इन आठ छन्दों को प्रयुक्त किया गया है। चतुर्थ सर्ग की रचना नौ छन्दों में हुई है। इनमें अनुष्टुप् का प्राधान्य है। अन्य आठ छन्दों के नाम इस प्रकार हैं– द्रुतविलम्बित, उपजाति (इन्द्रवज्रा + उपेन्द्रवज्रा), इन्द्रवज्रा, स्वागता, रथोद्धता, इन्द्रवंशा, उपजाति, (इन्द्रवंशा + वंशस्थ) तथा शालिनी। पंचम सर्ग में सात छन्दों को अपनाया गया है—उपजाति (इन्द्रवज्रा + उपेन्द्रवज्रा), इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका, वंशस्थ, प्रमिताक्षरा, रथोद्धता तथा शार्दूलविक्रीडित। छठे सर्ग में पांच छन्द दृष्टिगोचर होते हैं। इनमें उपजाति की प्रमुखता है। शेष चार छन्द हैं—उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, शार्दूलविक्रीडित तथा मालिनी। अष्टम सर्ग में प्रयुक्त छन्दों की संख्या ग्यारह है। उनके नाम इस प्रकार हैं—द्रुतविलम्बित, इन्द्रवज्रा, विभावरी, उपजाति (वंशस्थ + इन्द्रवंशा), स्वागता, वैतालीय, नन्दिनी, तोटक, शालिनी, स्रग्धरा तथा एक अज्ञातनामा विषम वृत्त। इस सर्ग में नाना छन्दों का प्रयोग ऋतु-परिवर्तन से उदित विविध भावों को व्यक्त करने में पूर्ण-तया सक्षम है। बारहवें सर्ग में भी ग्यारह छन्द प्रयोग में लाए गये हैं। वे इस प्रकार हैं—नन्दिनी, उपजाति (इन्द्रवंशा + वंशस्थ), उपजाति (इन्द्रवज्रा + उपेन्द्र-वज्रा), रथोद्धता, वियोगिनी, द्रुतविलम्बित, उपेन्द्रवज्रा, अनुष्टुप्, मालिनी, मन्दाक्रान्ता तथा आर्या। दसवें सर्ग की रचना में जिन चार छन्दों का आश्रय लिया गया है, उनके नाम इस प्रकार हैं—उपजाति (इन्द्रवज्रा + उपेन्द्रवज्रा), शार्दूलविक्रीडित, इंद्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा। इस प्रकार नेमिनाथ महाकाव्य में कुल मिला कर पच्चीस छन्द प्रयुक्त हुए हैं। इनमें उपजाति का प्रयोग सबसे अधिक है।

इस काव्य के मूलमात्र का संस्करण यशोविजय ग्रन्थमाला भावनगर से सं० १९७० में प्रकाशित हुआ है। उसके बाद आधुनिक टीका सहित एक पत्राकार संस्करण भी प्रकाशित हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

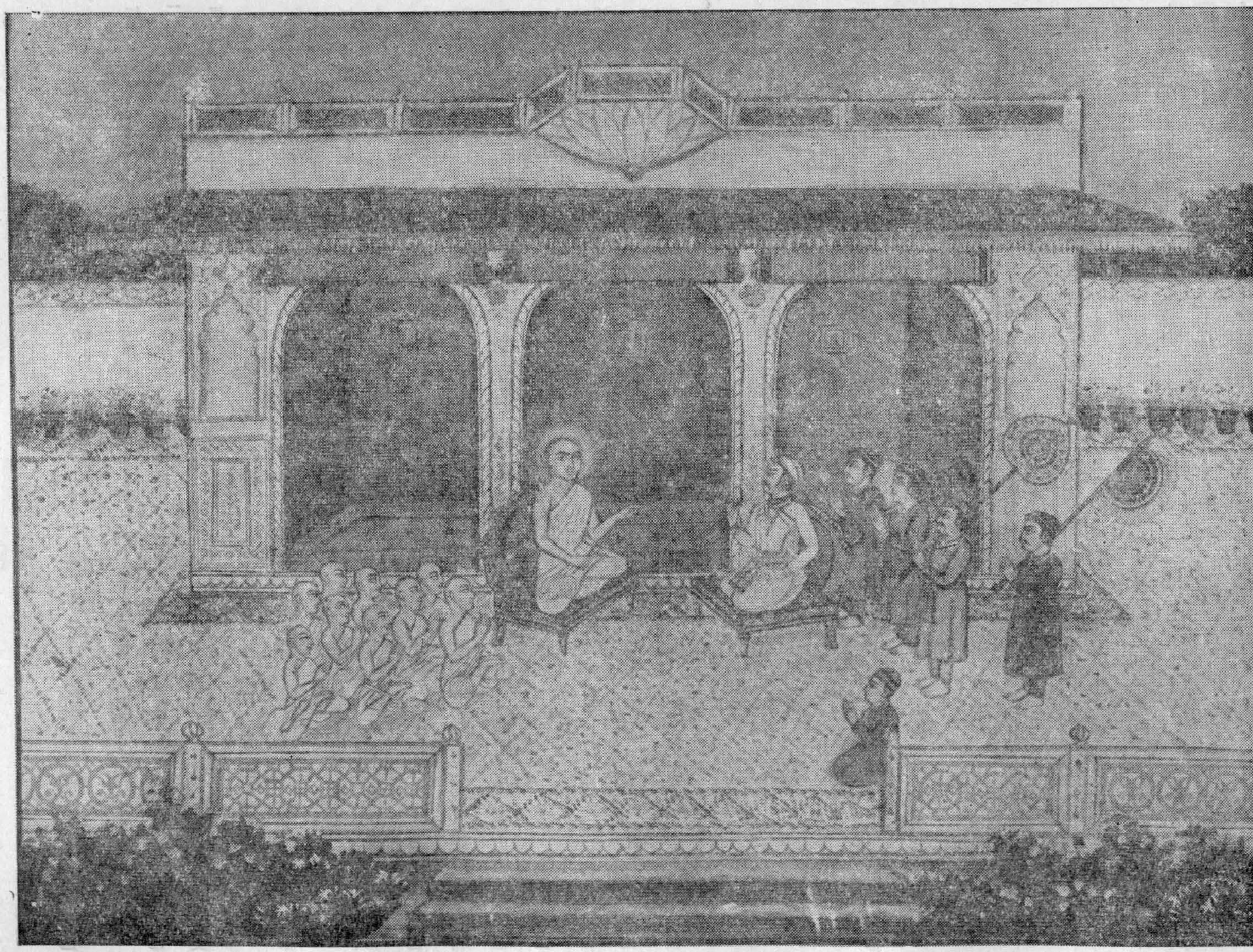

मणिधारी दादा श्रीजिनचन्द्रसूरिजी और दिल्लीपति राजा मदनपाल [महावीर स्वामी का मन्दिर, कलकत्ता से]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org